



विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujain@gmail.com

vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujain.com

महाजनपद युग और राष्ट्र का संगठन

राजेंद्र कुमार पाराशर

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

महाजनपद युग और राष्ट्र
का संगठन
राजेंद्र कुमार पाराशर

पृष्ठ क्र. 3-4

भारतीय प्राच्य साहित्य के
विदेश की अध्येता
रितु मिश्र

पृष्ठ क्र. 5-6

सम्बत् प्रवर्तक
विक्रमादित्य के नर्मदा तट
से प्राप्त साक्ष्य
डॉ. किरण शर्मा

पृष्ठ क्र. 7

आर्येतर संस्कृतियों के
समन्वय का प्रतीक शिव
यतींद्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 8

प्राचीन भारतीय भूगोल
की पड़ताल
मिथिलेश यादव

प्राचीन ऐतिहासिक तथा साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि सभी युगों के विचारकों, शासकों और धर्माचार्यों ने राष्ट्र को सर्वोपरि महत्व दिया। वैदिक युग में राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था और उसके संचालन नियन्त्रण के लिए सभा, समिति तथा नरिष्ठा आदि विभिन्न प्रकार की परिषदों का गठन किया गया। इन परिषदों में विधिवेत्ता विद्वान, धार्मिक नेता और समाज के विभिन्न वर्गों के सुयोग्य लोगों का प्रतिनिधित्व होता था। राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था का समस्त दायित्व राजा का होता था। अथर्ववेद की एक ऋचा में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य तथा तप द्वारा ही राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। राजा के अतिरिक्त जनता का भी राष्ट्र से घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ करता था, क्योंकि 'ऐतरेय ब्राह्मण' में जनता को ही राष्ट्र की विधायिका शक्ति कहा गया है। वैदिक भारत में राष्ट्र को सर्वोपरि शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसको मनुष्य ही नहीं, देवता भी नमन करते हुए पाये जाते हैं।

अथर्ववेद में राष्ट्र के महत्व का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि समस्त जनता के कल्याण की इच्छा रखने वाले आत्मज्ञानी ऋषियों ने आरम्भ में दीक्षा लेकर तप किया। उसके फलस्वरूप राष्ट्र, बल और ओज का निर्माण हुआ। इसीलिए समस्त देव वर्ग को चाहिए कि वह राष्ट्र की अभिवन्दना करें। वैदिक ऋषियों द्वारा अनेक ऋचाओं में राष्ट्र तथा राष्ट्रधर्म को सर्वोपरि महत्व देते हुए उसके कल्याण मंगल के लिए शुभकामनाएँ प्रकट की गयी हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि 'वरुणदेव, बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि चारों देवता राजा को स्थिरता एवं प्रदान करें।' इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा गया है कि हमारे राष्ट्र में धनुर्धर, लक्ष्यभेदी और महारथी क्षत्रिय वीर उत्पन्न हों। वैदिक राष्ट्र की सामाजिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उसके संगठन और नियमन की व्यवस्था आज की अपेक्षा कुछ भिन्न थी। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में उसके पाँच अंग निश्चित किये गये थे, जिनके नाम थे, कुल (परिवार), ग्राम, विश् (कबीला), जन (जनपद) और राष्ट्र। ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओं और परवर्ती वैदिक साहित्य में राष्ट्र के इन पाँच अंगों या विभागों का विस्तार से वर्णन किया गया है। राष्ट्र की प्रथम इकाई परिवार होता था और उसके बाद ग्राम, उससे बड़ा विश् (वर्ग), उससे भी बड़ा जनपद और फिर राष्ट्र, इस रूप में वैदिक भारत की सामाजिक व्यवस्था विभाजित थी। ऋग्वेद के एक मंत्र में कामना की गयी है कि इस ग्राम के सब निवासी नीरोग एवं हृष्ट-पुष्ट हो। राष्ट्र-व्यवस्था के लिए धार्मिक तथा न्यायिक आदि जिन विभिन्न परिषदों का गठन किया गया था, उनका आधार राष्ट्र के उक्त पाँचों अंग थे। वेदों तथा वैदिक साहित्य, पुराणों और महाभारत आदि में राष्ट्र एवं जनपद की उन्नति, शासन व्यवस्था, सीमा विस्तार और स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में अनेक तरह के विवरण देखने को मिलते हैं। ये विवरण ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। स्मृतियों में भिन्न-भिन्न जनपदों तथा देशों के निवासियों के लिए पृथक-पृथक आचारों की व्यवस्था की गयी है। वहाँ उनकी प्रकृति तथा स्थिति के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला गया है।

पुराणों तथा महाभारत में उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक विस्तार से कहा गया है। इन सभी विवरणों का समन्वयात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय समाज भिन्न-भिन्न देशों, प्रदेशों तथा जनपदों में विभाजित था और उनका प्रशासन एक सर्वानुमोदित संहिता के द्वारा सम्पन्न होता था। शासन की दृष्टि से समस्त राष्ट्र प्राच्य, उदीच्य, दाक्षिणात्य, पौरवात्य आदि दिशा-भेद के आधार पर विभक्त था। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसंग में विभिन्न जनपदों के राज्याभिषेक की परम्पराओं का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि प्राच्यों में साम्राज्य के लिए, दाक्षिणात्यों में भोज्य के लिए, पाश्चात्यों में स्वराज्य के लिए, उदीच्यों में वैराज्य के लिए और ध्रुव मध्य दिशा में राज्य के लिए

भारतीय प्राच्य साहित्य के विदेश की अध्येता

रितु मिश्र

भारतीय साहित्य पर व्यापक एवं गम्भीर रूप से प्रकाश डालने वाले विद्वानों में वेबर नाम उल्लेखनीय है। इस जर्मन विद्वान् का जन्म 1825 ई. में हुआ था। उनका जीवन संस्कृत की सेवा करते हुए व्यतीत हुआ। मैक्समूलर ने जो कार्य ऋग्वेद के क्षेत्र में किया, वही कार्य वेबर ने यजुर्वेद के क्षेत्र में किया। उन्होंने मैत्रायणीसंहिता (1847 ई.) और 'काण्वसंहिता' (1852 ई.) का सम्पादन तथा प्रकाशन किया। अनेक वर्षों के परिश्रम से उन्होंने 1882 ई. में संस्कृत साहित्य पर सर्वप्रथम विवेचनात्मक इतिहास हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर का प्रणयन पर सर्वप्रथम सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं बृहत् कार्य इंडिस्कन स्टडियन है। यह किय सत्रह जिल्दों में पूरा हुआ है और इसको लिखने में लगभग पैंतीस वर्ष लगे। उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में 'शतपथ ब्राह्मण' (1824 ई.) तथा 'कात्यायन श्रौतसूत्र' (1859 ई.) नाम उल्लेखनीय है। वेबर बड़े विद्यानुरागी विद्वान थे। बर्लिन ने राजकीय पुस्तकालय में संगृहीत संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का बृहत् सूची पत्र तैयार करके उन्होंने पुरातन एवं अज्ञात ग्रन्थ राशि को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

वेबर द्वारा संग्रहीत और बर्लिन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित 500 जैन हस्तलिखित ग्रन्थों का अनुशीलन करके उन्होंने जैन साहित्य पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। भारतीय विद्या विषयक वेबर के महान कार्यों से प्रेरित होकर योरोप और अमेरिका के अनेक प्राच्य विद्याप्रेमी उनके शिष्य बने। उनके कार्यों से भारतीय साहित्य का पश्चिम के देशों में व्यापक प्रचार-प्रसार और स्वागत हुआ। भारतीय विद्याप्रेमी विद्वान् डॉक्टर आर्थर एंथनी मेकडोनेल का जन्म 1854 ई. में मुजफ्फरपुर (भारत) में हुआ था। उनके पिता अलेक्जेंडर मेकडोनेल भारतीय सेना के एक उच्चाधिकारी थे। मेकडोनेल की शिक्षा-दीक्षा जर्मनी तथा ऑक्सफोर्ड में हुई थी। उन्होंने तुलनात्मक भाषा की दृष्टि से जर्मन, संस्कृत और चीनी भाषाओं के विशेष अध्ययन पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनके संस्कृत गुरु विख्यात वैयाकरण एवं कोशकार सर मोनियर विलियम्स, बेन्फे, रॉथ तथा मैक्समूलर थे। लिपजिग विश्वविद्यालय से ऋग्वेद पर कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' का पाठ शोध और उस पर प्रबन्ध लिखने के उपलक्ष्य में उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि मिली थी। तदनन्तर वे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए। अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने संस्कृत के अध्ययन, अनुशीलन पर व्यतीत किया। वैदिक वाङ्मय के क्षेत्र में उनकी कृतियों के नाम हैं—ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी (1896 ई.), वैदिकरीडर (1897 ई.), हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर (1900 ई.), वैदिक ग्रामर (1910 ई.) और श्वैदिक इण्डेक्स (कीथ के सहयोग से)। वेबर और मेकडोनेल के अतिरिक्त तीसरे इतिहासज्ञ विद्वान् का नाम आर्थर बेरीडोल



कीथ है। उनका जन्म 1879 ई. को ब्रिटेन में हुआ था। एडिनबरा और आक्सफोर्ड में उनकी शिक्षा हुई। एडिनबरा विश्वविद्यालय में ही भाषा विज्ञान तथा संस्कृत विषय के लिए ये अध्यापक नियुक्त हुए और लगभग तीस वर्षों तक वहाँ अध्यापन कार्य करते रहे। मेकडोनेल को वे अपना गुरु मानते थे। 1907 ई. में जब मेकडोनेल भारत की यात्रा पर आये तो उनके उक्त स्थान पर कीथ की नियुक्ति हुई।

वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स ऐण्ड सब्जेक्ट्स को तैयार करने में मेकडोनेल के साथ उनका सहयोग रहा। वैदिक ज्ञान-सम्बन्धी उनका दूसरा ग्रंथ रिलिजन ऐण्ड फिलॉसफी ऑफ दि वेद ऐण्ड दि उपनिषद् उनकी गंभीर गवेषणा तथा उनके व्यापक अध्ययन का परिणाम है। उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौषीतकी ब्राह्मण का भी दस जिल्दों में अनुवाद (1920 ई.) किया। शांखायन आरण्यक (1922 ई.) और कृष्ण यजुर्वेद (1924 ई.) का भी उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद किया। उनके बौद्ध दर्शन विषयक प्रौढ़ ग्रंथ का नाम है बुद्धिस्ट फिलॉसफी इन इण्डिया ऐण्ड सीलोन। हिन्दू तत्व ज्ञान पर उन्होंने सांख्य सिस्टम, कर्म मीमांसा और इण्डियन लॉजिक ऐण्ड आटामिज्म नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य संस्कृत ड्रामा और हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (1928 ई.) है। उनका इतिहास ग्रन्थ अपने विषय का आज भी प्रतिनिधित्व करता है। धर्म, दर्शन, साहित्य और इतिहास विषयक अपनी महत्वपूर्ण कृतियों के अतिरिक्त उन्होंने लन्दन के इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में और ऑक्सफोर्ड की बोडलियन लाइब्रेरी में सुरक्षित संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की बृहत् सूची (1935 ई.) के निर्माण में योगदान किया। जर्मन विद्वान थीबो, भारतीय ज्ञान की ओर आकृष्ट हुए थे। 1885 में वे अध्यापक होकर वाराणसी आये और 1888 ई. तक वहीं रहे। उन्होंने पंचसिद्धान्तिका और शांकर-रामानुज भाष्य सहित वेदान्त सूत्रों का प्रामाणिक संस्करण



प्रकाशित किया। मीमांसा दर्शन तथा ज्योतिर्विज्ञान पर भी उन्होंने गंवेशणात्मक निबन्ध लिखे। भारतीय तत्वज्ञान, धर्म और साहित्य के प्रति पाश्चात्य विद्वानों की जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती रही। इसी प्रेरणा से एम. रोजी नामक एक फ्रांसीसी विद्वान ने योरोप में ही 1814 ई. तक संस्कृत का अध्ययन तथा प्रचार-प्रसार किया। जैन साहित्य के विद्वान जैकोबी ने भी जैन सूत्रों का अंग्रेजी अनुवाद किया। उन्होंने ज्योतिर्विद्या पर भी कार्य किया। सर एडविन आर्नल्ड ने (1896 ई.) में भी 'चौरपंचाशिका' का पद्यबद्ध अंग्रेजी अनुवाद किया। प्रसिद्ध वैयाकरण बोटलिंग ने पाणिनि व्याकरण का विशुद्ध संस्करण तैयार किया और रॉथ के सहयोग से संस्कृत कोश का भी सम्पादन किया। पाणिनि के स्थितिकाल पर विशद प्रकाश डालने वाली गोल्डस्टकर की कृति में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश किया गया है।

मूल वेदों और वैदिक साहित्य पर कार्य करनेवाले विद्वानों में मुडर और आफ्रेस्तको का नाम उल्लेखनीय है। मुडर का ओरिजिनल संस्कृत टेस्ट वैदिक जीवन पर व्यापक रूप से प्रकाश डालनेवाला अपने विषय का एकमात्र ग्रन्थ है। वह पाँच भागों में पूरा हुआ है। इस ग्रन्थ में वैदिक वाङ्मय इतिहास तथा वासकालीन जन-जीवन पर मौलिक प्रकाश डाला गया है। वैदिक संस्कृति के अध्येताओं के लिए इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। इसी प्रकार आफ्रेस्तको ने ऋग्वेद तथा ऐतरेय ब्राह्मण का रोमन संस्करण निकालकर अपूर्व कार्य किया। इसी प्रकार ऋग्वेद का एक अन्य रोमन संस्करण एदारुक नामक विद्वान ने भी तैयार किया। अमेरिका में जिन प्राच्यविद्याप्रेमी विद्वानों ने सर्वप्रथम भारतीय साहित्य को अपनी साधना का विषय बनाया, उनमें विलियम हाइट हिटनी (1827-1894 ई.) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वैदिक और लौकिक संस्कृत पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों में हिटनी का नाम अग्रणी है। उन्होंने अथर्ववेद के प्रातिशाख्य का समीक्षात्मक अनुवाद तैयार करने के अतिरिक्त अथर्ववेद पर एक अनुक्रमणिका भी लिखी और सम्पूर्ण अथर्ववेद पर अंग्रेजी भाष्य भी। भाषा विज्ञान, व्याकरण और ज्योतिष आदि विषयों में भी उनका पर्याप्त ज्ञान था। 1875 ई. में प्रकाशित उनका संस्कृत ग्रामर अपने विषय का सर्वप्रथम प्रौढ़ ग्रन्थ है। उसके बाद मेकडोनेल ने इस विषय पर कार्य किया।

सूर्यसिद्धान्त का भी हिटनी ने अनुवाद किया। प्राच्यविद्या की विभिन्न शाखाओं पर लिखे गये उनके लेखों तथा ग्रंथों की संख्या 360 के लगभग है। ऐसे समय, जब कि विश्व के विभिन्न राष्ट्र, विशेषरूप से पश्चिमी जगत् भौतिक एवं वैज्ञानिक प्रगति की ओर अग्रसर था और संस्कृत का अध्ययन, अनुशीलन लोकप्रियता एवं अर्थ की दृष्टि से नितान्त गौण समझा जाता था, हिटनी साहब ने विश्व को संस्कृत विद्या की ज्योति से आलोकित किया। उसकी इस साधना तथा निष्ठा की प्रो. लेनमैन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। प्रोफेसर ओल्देनवर्ग ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों को अनुशीलन करके ऋग्वेद पर सोद्वरण टिप्पणियाँ लिखीं। 'विनयपिटक' पर भी उन्होंने कार्य

किया। सांख्यान गृह्यसूत्रों का भी उन्होंने सम्पादन किया। इसी प्रकार प्रोफेसर ब्लूमफील्ड ने भी अथर्ववेद का अनुवाद किया। प्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान हिलेब्राण्ट ने शाखायन श्रौतसूत्र के सम्पादन के अतिरिक्त तीन भागों में वैदिक मैथालॉजी ग्रंथ का प्रणयन किया। इसी प्रकार तत्ववेत्ता एवं वैयाकरण विद्वान बोधलिंग ने बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषद का पाठशोध और सम्पादन कर वैदिक ज्ञान की विरासत को प्रवर्तित किया। उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी और हेमचन्द्र की अभिधान चिन्तामणि का भी सम्पादन किया। चीन में भारतीय प्रभावों की खोज का कार्य पहले सिल्विन लेबी ने और तदनन्तर सर अरेल स्टाइन ने किया। वे 1903 में उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान में पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उन्होंने चीन के सम्राट ले और काय एशिया के विभिन्न महान् व्यक्तियों के बीब व्यपडित चर्मपत्रों पर संस्कृत लेखों का और बाकू के निकट एक हिन्दू मन्दिर का पता लगाकर उसके द्वार पर काकीर्णित शिलालेख की जानकारी की। उन्होंने बानियान तथा फोदुरिस्तान (मध्य एशिया) के बौद्धमठों से प्राप्त सचित्र भित्तियों को उतारकर उन्हें दिल्ली के सेंट्रल एशियाटिक एन्टीक्विटीज म्यूजियम में व्यवस्थित किया। भारतीय तत्वज्ञान, भाषा विज्ञान और साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अन्य भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने कार्य किया। इसी प्रकार के विद्वानों में राइस इंदिवस मारिस हार्डी और प्रो. जीन फिलियोजेट प्रभृति का नाम उल्लेखनीय है। सातविद्यानुरागी आधुनिक संस्कृत-ग्रंथों के अध्ययन, अनुशीलन तथा अनुवाद के अतिरिक्त फ्रांसीसी विद्वानों में अशोक के अभिलेखों के अध्येता एमिले सेनाई, इन्द्रधर्म-दर्शन तथा कला के अन्वेषी पी. पौलेयन तथा कोडेस फउचर और चीनी यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों के अनुवादक चावन्नेस तथा एस. जूलियन का नाम उल्लेखनीय है। स्वामी रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के जीवनी लेखक रेने, गैगान तथा रोमी रोलों का नाम अविस्मरणीय है। रोमी रोलो ने गाँधी दर्शन को आधुनिक विश्व के नव-निर्माण के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया है और परम्परागत भारतीय सभ्यता तथा ज्ञान की विरासत की भूरि-भूरि प्रशंसा को है। 19वीं शती तथा उसके बाद भारत के विभिन्न अंचलों में बिखरे हुए और गुरखा-व्यवस्था के अभाव में नष्टोन्मुख संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य भी बड़ी तन्मयता से सम्पन्न हुआ। इस प्रकार के विद्वानों में कीलहान, पीटर्सन, आफेक्ट और स्टीन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है डॉ. बूलर के निरीक्षण में मध्य भारत में संग्रहीत हस्तलिखित ग्रंथों को व्यवस्थित करके कीलहाने में 1874 ई० में नागपुर से उनकी एक सूची प्रकाशित की। इसी प्रकार बर्नल ने ए क्लासीफाइड इण्डेक्स टु दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि पैसेल एट दि तजार नाम से तंजोर पुस्तकालय के संग्रह का सूचीपत्र तैयार करके उसे 1880 ई. में लन्दन से मुद्रित कराया। 1880-81 ई. में बम्बई प्रदेश के हस्तलेखों की एक रिपोर्ट कीलहान ने 1881 ई. में बम्बई से ही मुद्रित करायी।

सम्वत् प्रवर्तक विक्रमादित्य के नर्मदा तट से प्राप्त साक्ष्य

डॉ. किरण शर्मा

सम्वत् प्रवर्तक सम्राट विक्रमादित्य भारतीय परम्परा में अद्वितीय शासक रहे हैं। दो हजार से अधिक वर्ष पूर्व उन्होंने जिस सम्वत् का प्रवर्तन किया था। वह कृत, मालव अथवा विक्रम या विक्रमादित्य के नाम से समय-समय पर प्रचलित रहा। आज भी वह विक्रम सम्वत् के नाम से विख्यात है। भारतीय तथा विदेशी विभिन्न भाषाओं में प्राचीन काल से ही विक्रमादित्य की वीरता, दानप्रेम, न्यायशील, पराक्रम, लोकप्रियता तथा आदर्श चक्रवर्ती शासक के रूप में चर्चित रहे हैं। उनकी लोकप्रिय कहानियाँ पुराणों, साहित्य तथा लोक साहित्य में प्रचुर रूप से पायी जाती हैं। विक्रम सम्वत् के अनुसार दिनचर्या पूरे उत्तर भारत में प्रचलित है। तात्पर्य यह कि भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय राजा विक्रमादित्य हैं। नर्मदा तट से प्राप्त उज्जयिनी

प्राचीन सिद्ध करते हैं। उज्जयिनी चिह्न वेदी में कल्पवृक्ष राज्य की निरन्तर सुख समृद्धि बताते हैं। दण्डधारी शिव राजा के शैव सिद्ध करते हैं। उज्जयिनी चिह्न पर 'म' का अंकन महादेव और मालव दोनों का संकेत करते हैं। सूर्य ध्वज राजा को सूर्य-सा प्रतापी और उज्जैन को सौर कालगणना का केन्द्र भी सिद्ध करते हैं। इस प्रकार नर्मदा तट से प्राप्त सिक्कों से विक्रमादित्य संबंधी कई तथ्य प्रकट होते हैं, जिनकी इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका होगी। नर्मदा का तटवर्ती क्षेत्र भीमबेटका सर्वविदित है कि वहाँ प्रागैतिहासिक गुफाएँ हैं। गुफाओं में प्रागैतिहासिक से लेकर मध्यकाल तक के चित्र प्राप्त होते हैं। वहाँ पर म.प्र. शासन के पर्यटन विभाग और महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन द्वारा जुलाई और अगस्त माह 2013 में दो



राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियाँ आयोजित की। धरातलीय सर्वेक्षण करने एवं मार्गदर्शन के लिए उपस्थित थे, भीमबेटका परिक्षेत्र के पूर्व प्रभारी अधिकारी भारतीय सर्वेक्षण विभाग नई दिल्ली डॉ. नारायण व्यास, जिन्होंने गुफा में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के शैल चित्र दिखाये, जिसमें विक्रमादित्यकालीन अश्वमेघ का दृश्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

अश्व के पीछे-पीछे अस्त्र-शस्त्र लिये सैनिक दिखाई दे रहे हैं। यह विक्रमादित्य का एक महत्वपूर्ण प्रमाण नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र भीमबेटका में प्राप्त हुआ

के सिक्के पर बेलगाम तेजी से भागता घोड़ा अंकित है। अश्वमेघ अथवा राजसूर्य यज्ञ के लिए छोड़ा गया अश्व बेलगाम होता था, जिससे वह अपनी इच्छानुसार दिशा - दिशा में देशों-प्रदेशों की यात्रा कर सके। कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र में भी अश्वमेघ के लिए शृंग राजा पुष्यमित्र द्वारा छोड़ा गया अश्व बेलगाम यात्रा कर रहा था। सम्राट विक्रमादित्य के सिक्के पर अंकित घोड़ा भी बेरोकटोक तीव्र गति से भागता अंकित है। घोड़े के पीठ पर दंडाकार है। वह जयध्वज है या पंख यह स्पष्ट नहीं है। जय ध्वज हो तो विक्रमादित्य की जय यात्रा का प्रतीक है। यदि वह पंख है तो वह उड़ता घोड़ा है। उड़ता घोड़ा विक्रमादित्य की तीव्र गति से विजय यात्रा का प्रतीक है। राजा भोज की शृंगारमंजरी कथा में विक्रमादित्य के उड़ते घोड़े का वर्णन पाया जाता है।

श्री विक्रम, राजा विक्रम आदि सिक्कों पर अंकित हैं। एक सिक्के पर उज्जयिनी और विक्रम अंकित है। इससे सिद्ध होता है कि यह विक्रम उज्जैन के ही थे। अक्षर ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी लिपि में है। सिक्कों पर उज्जयिनी चिह्न उन्हें

है। नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र कसरावद से 1936-38 में हुए उत्खनन से प्राप्त पात्र पर मूलदेव ब्राह्मी अक्षर में लिखा है। मूलदेव विक्रमादित्य का सभासद था। इसी क्षेत्र से मूलदेवस नामांकित मृग सील प्राप्त हुई है, जिसकी लिपि ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी, भाषा-प्राकृत है। मूलदेव का एक महत्वपूर्ण प्रमाण सन् 1975 से 1977 में हुए अयोध्या के पुरा उत्खनन से प्राप्त हुआ है। इस उत्खनन से सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिसमें मूलदेवस नामांकित है। सिक्के के पुरोभाग पर दक्षिण मुख्य वृषभ के साथ वहीं ध्वजदण्ड और कहीं तीन चाप का चौत्य है। पीछे वैदिक वृक्ष और उज्जयिनी चिह्न बना हुआ है। मूलदेव का एक ओर प्रमाण साँची के स्तूप में सूचित है। विपुला (मूलदेव की गणिका प्रेमिका) उज्जयिनी की विपुला लेख। एक ओर अचला (मूलदेव की गणिका प्रेमिका) नन्दिनगर की अचला भिक्षुणी इसका साँची स्तूप पर दो बार लेख है। मूलदेव का एक प्रमाण हमें अवश्लेश्वर के स्तम्भ पर अंकित लेख में प्राप्त होता है, जिसमें लिखा है 'भगवता आपरा तापुसेना ससपुतस सभायस' अथवा पुसेन या तापुसेन शशपुत्र ने भार्या सहित यह स्तम्भ

बनवाया। शश मूलदेव का मित्र था। मूलदेव विक्रमादित्य का सभासद था। अतः स्तम्भ लेख विक्रमादित्यकालीन है। यह स्पष्ट होता है कि भारत का न्याय प्रिय सम्राट विक्रमादित्य चक्रवर्ती सम्राट थे। उसके पुरा प्रमाण भारत भर में प्राप्त होते हैं। नर्मदा नदी के तटवर्ती क्षेत्र से प्राप्त साक्ष्य विक्रमादित्य के इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। विक्रमादित्य एवं तत्कालीन राजवंशों से संबंधित मुद्रा साक्ष्य मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात्, स्थानिक, जानपदिक एवं अनुवांशिक राज्य स्थापित किये। इन नवोत्थित राज्यों ने अपने सिक्के, मुख्यतः ताँबे के चलाये थे। उनके चाँदी के भी सिक्के बहुत ही कम हैं। आहत-मुद्राओं की पद्धति पर बने चौकोर अथवा आयताकार डेढ इंच लम्बे और पौन इंच चौड़े ताँबे के सिक्के बिहार में अनेक स्थलों से मिले हैं। उन पर एक ओर पाँच और दूसरी ओर चार लांछन हैं।

पाँच चिह्नों वाला समूह मौर्यकालीन चाँदी की आहत मुद्राओं के लांछन-समूह से काफी समानता रखता है, किन्तु बनावट में उनसे भिन्न है। इन सिक्कों को ई.पू. 184 में मौर्य-सिंहासन अपहृत करने वाले पुष्यमित्र शुंग ने प्रचलित किया होगा ऐसी धारणा है। पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी जब मगध त्यागकर विदिशा चले गए तो वहाँ भी उन्होंने अपनी आहत मुद्राओं की तकनीक में बने सिक्के चलाये। इन सिक्कों पर एक लांछन का स्थान आलेख ने लिया है। उनमें नारायण मिश्र, भूमिदत्त, हस्तिदेव, भानुमित्र, दामभद्र, भगिला, कविभूति नाम हैं। ये सिक्के सम्भवतः परवर्ती शुंगशासकों और उनके उत्तराधिकारी कर्णों के हैं। सिक्के बनाने के लिए आहत निर्माण-प्रणाली के स्थान नवीन प्रणालियाँ अपनायी गयी तथापि लांछनों का प्रयोग पूर्ववत् बना रहा। अधिकार की अभिव्यक्ति के लिए लेखों का एक नया तत्व भी इनके साथ जुट गया। अर्थात् इन सिक्कों पर लेखों का प्रयोग होने लगा। इस काल के कुछ अभिलेखरहित सिक्के उत्तर-पश्चिम में गांधार से, गंगा काँटे में कौशाम्बी से और मध्य भारत में एरण और उज्जयिनी से मिले हैं। उज्जयिनी के सिक्के असंख्य भातों के हैं। अधिकांश पर एक ओर उज्जयिनी चिह्न कहा जाने वाला प्रतीक है। कुछ सिक्कों पर उज्जयिनी चिह्न के स्थान पर मेढक देखने में आता है। अभिलेखयुक्त सिक्के अपने लेखों के अनुसार तीन प्रकार के हैं - (1) नागर, (2) जनपदीय और (3) वैयक्तिक। नागर सिक्कों पर नगर-नाम अंकित है, कदाचित् इन्हें नगर-राज्यों ने प्रचलित किया था।

सिक्कों से ज्ञात इस काल के अन्य नगर राज्य थे- गंगा कांटे में वाराणसी, श्रावस्ती और कौशाम्बी, पूर्वी राजस्थान में उद्देहिक और सुदवास, मध्यभारत में उज्जयिनी, एरकिण्य, विदिशा, महिष्मती, कुरर, भगिला और त्रिपुरी, दक्षिण में नगर। ये सभी नगर-राज्य अल्प जीवी थे। इनमें से अधिकांश के पीछे चलकर राजतंत्र का रूप धारण कर लिया। इन नगर राज्यों में से कुछ के, विशेषतः राजस्थान के सिक्कों पर स्थान और शासक दोनों के नाम मिलते हैं। इन सिक्कों का महत्व इस

बात में है कि इस तथ्य को उद्भासित करता है कि उस नगर राज्य में शासन शक्ति नगर देवी में अंतर्भूत थी। पंजाब के जनपदीय राज्य औदुम्बर, कुणिन्द और यौधेय, जो नगर राज्यों के प्रायः समकालिक थे, इसी प्रकार के थे। उन्होंने अपने इष्ट देवों महादेव (शिव), चत्रेश्वर (शिव) और ब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के नाम पर सिक्के प्रचलित किये थे। इस प्रकार ई.पू. दूसरी शती में सिक्के प्रचलित करने वाले राज्य आग्नेय, राजन्य, शिवि, त्रिगत और यौधेय ज्ञात होते हैं। इनमें यौधेय का अस्तित्व तो गुप्त साम्राज्य के उदय तक रहा। ई.पू. दूसरी शती के जनराज्यों के अपने को अपने सिक्कों पर जनपद नाम से अभिहित किया है। उनका नाम सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में लिखा मिलता है। कुछ जनपदों ने अपने नाम के साथ अपने स्थान का भी उल्लेख किया है।

परवर्ती जनराज्यों में अनेक राज्यों के सिक्के ऐसे हैं, जिन पर जन-नाम के साथ-साथ राजा अथवा महाराजा उपाधि से युक्त वैयक्तिक नामों का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक जन-राज्य के सिक्कों का अपना-अपना भार-मान था और कइयों ने खरीज के रूप में एक से अधिक मूल्य के सिक्के चलाये थे। कुछ जनराज्यों के सिक्के चाँदी के भी थे, किन्तु वे अब दुर्लभ हैं। चाँदी के सिक्के यवन-राजाओं के हेमी-दुरुम सिक्कों के भार-मान के हैं और उनकी बनावट भी उनके सिक्कों से मिलती-जुलती हुई है। यौधेयों के परवर्तीकालीन सिक्के सुडौल बनावट के हैं और उन पर कुषाण प्रभाव परिलक्षित होता है। इस काल में गंगा-यमुना के काटे में राजक हुआ। वहीं उनके सिक्कों से चार बड़े राज्यों के होने का पता लगा है। इनमें एक तो शूरसेन था, जिसकी राजधानी की दूसरा पांचाल था, उसकी राजधानी अहिच्छत्र (रामनगर जिला बहती तीसरा वत्स था, उसकी राजधानी कौशाम्बी थी और चौथा कोरल था उसकी राजधानी या तो श्रावस्ती (सहेत-महेत, जिला गोडा) रही होगी या फिर साकेत (अयोध्या, जिला फैजाबाद)। शूरसेन (धुर) के राज्य पर पहले शक क्षत्रपों ने अधिकार किया। बाद में उस पर कुषाणों का आधिपत्य हुआ।

विदेशी राजाओं में रजुबुल पहला राजा था। उसके अद्यतन सिक्के हमीद्रा भारमान के हैं और उनकी चाँदी में काफी मात्रा में सीसे की मिलावट है। देखने में वे वाख्त्री-भारतीय नरेश स्ट्रेटो (प्रथम एवं द्वितीय) के उत्तरकालीन सिक्कों से बहुत कुछ मिलते हुए हैं। इन पर एक ओर राजा को दक्षिणाभिमुख छवि और भ्रष्ट यावनी भाषा में नाम के साथ बेसीलियास सोटोरास विरुद हैं।

रजुबुल के बाद उसके दो सोडास और तोरणदास शासक बने, पश्चात् कुछ काल तक और हगामश ने संयुक्त रूप से शासन किया। फिर हगामश अकेले शासक रहा। उनके बाद शिवदत्त और शिवघोष नामक दो अन्य शासक हुए। रजुबुल और सोडास के सिक्कों पर उन्हें महाक्षत्रप कहा गया है। पांचाल के सिक्कों में अविच्छिन्न एकरूपता देखने में आती है और उनसे वहाँ के इक्कीस राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं।

आर्येतर संस्कृतियों के समन्वय का प्रतीक शिव

यतींद्र तिवारी

यद्यपि वैदिकों और सिन्धुवासियों में लम्बे समय तक घोर संघर्ष होते रहे, किन्तु दूसरी ओर उनकी परम्पराओं तथा मान्यताओं को एक-दूसरे ने पर्याप्त रूप में अपनाया। पशुपति शिव या रुद्र की आराधना इसका उदाहरण है। पशुपति शिव सिन्धुवासियों के आराध्य देव थे। इसीलिए ब्राह्मण ग्रन्थों में यह निर्देश किया गया कि वैदिक यज्ञकर्ता उसकी पूजा-प्रतिष्ठा न करें। किन्तु उपासना और कला के क्षेत्र में शिव के व्यापक प्रभाव ने आर्य और आर्यभिन्न परम्पराओं में समन्वय स्थापित कर समस्त भारतीय जन-मानस में अविच्छिन्न राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया। आर्यों और आर्येतर जातियों के सांस्कृतिक समन्वय में वैदिक रुद्र और पौराणिक शिव का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस समन्वय की परिचायक एवं वाहक शिव संस्कृति है, जिसका व्यापक प्रचार-प्रसार उत्तर से दक्षिण भारत तक रहा है। इस रूप में भारतीय संस्कृति के निर्माण तथा उत्तरोत्तर विकास में सुर-असुर, आर्य-आर्येतर, दोनों की प्रतिद्वन्द्वी विचारधाराओं ने एकसमान योगदान किया। सुरों, देवताओं, असुरों, दानवों और दैत्यों ने शिव से ज्ञान प्राप्त किया। वेदों तथा वैदिक साहित्य में रुद्र को प्रमुख देवता के रूप में माना गया है। एक ओर तो उसको उग्र, भीम और क्रोधी स्वभाव का प्रतिनिधि कहा गया है। दूसरी ओर उसकी दयालु, कल्याणकारी, सुखदाता और व्याधियों के विनाशक के रूप में स्तुति की गयी है।

आर्येतर अवैदिकों में रुद्र की पूजा का व्यापक प्रचलन था। सिन्धु-सभ्यता के खण्डहरों से अनेक लिंग भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ शिव शक्तियों तक एकमुख, त्रिमुख तथा चतुर्मुख शिव के रूप में अंकित किये गये। ऋग्वैदिक रुद्र ही पुराणकालीन शिव हैं। पुराणों के अनुसार प्रजापति कश्यप से जिन एकादश रुद्रों की उत्पत्ति हुई थी, उन्हीं रुद्र-रूपों में से एक रूप शिव का भी था। रुद्र की शिव-रूप में प्रतिष्ठा-आराधना आज तक चली आ रही है। उत्तराखण्ड में केदारनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, महामहेश्वर और कल्केश्वर नाम से पंच केदार शिव के वैदिक रुद्र के प्रतीक आज भी विद्यमान हैं। वेदों में आर्यों की जिस असुरोपासक शाखा को अहिं कहा गया है वह नग (पर्वत) की निवासी होने के कारण पुराणों में नाग नाम से सम्बोधित की गयी है। वृत्रासुर और शम्बर जैसे विकट प्रभावशाली एवं बलवान् राजा नागवंश के ही थे। ऋग्वेद के सर्पयाज्ञी ऋषि भी नागवंशीय थे। महाराज ययाति के पिता और राजा पुरुरवा के पौत्र राजा नहुष को पराजित करने वाले नागराज नागेन्द्र इसी वंश के थे। वे पृथा (कुन्ती) के पिता सूरसेन के नाना थे। उत्तरवैदिक काल में रुद्र का विकास अधिक तीव्र गति से हुआ। उन्हें 'शतरुद्रिय' और 'शिवातनुः' (मंगलमय) कहा गया और साथ ही पर्वत पर शयन करने के कारण उन्हें 'गिरिश' और

'गिरित्र' नाम से अभिहित किया गया 297। उन्हें पशुओं का स्वामी कहा गया 298, जो 'पशुपति' (पशूनाम् पतिः) के रूप में उनका विशिष्ट नाम हो गया। धीरे-धीरे रुद्र की व्यापकता बढ़ती गई तथा समाज में उनका विस्तार होता गया। दिशाओं के पति (स्वामी) के रूप में भी उनका स्थान बनता गया। 'कपर्दिन्' (जिनकी ज्वालाएँ कपर्दों की तरह थीं) की संज्ञा देकर उन्हें अग्नि से अभिन्न माना गया। उनकी उग्रता जब शांत हो जाती थी तब उन्हें 'शम्भु', 'शंकर' और 'शिव' नामों से अभिहित किया जाता था। चर्म धारण करने के कारण वे 'कूर्तिवासनः' के रूप में ख्यात थे। उन्हें 'शर्व-भव' भी कहा गया। सम्भवतः निषाद आदि अनार्यों से सम्बद्ध होने के कारण ही उनको चर्म-परिधान धारण करनेवाला माना गया था। रुद्र से अनेक रुद्रों को उद्भूत माना गया था, जो उनकी व्यापकता व्यंजित करता है। इसलिए इन रुद्रों को गणपति, कर्मकार, कुम्भकार, रथकार, तक्षक और निषादों के पति (स्वामी) के रूप में स्वीकार किया गया। लगता है, उपर्युक्त वर्गों और अनार्य जातियों के वे उपास्य और आराध्य देव थे। इसी युग में आर्य रुद्र का आर्येतर शिव के साथ समीकरण हुआ।

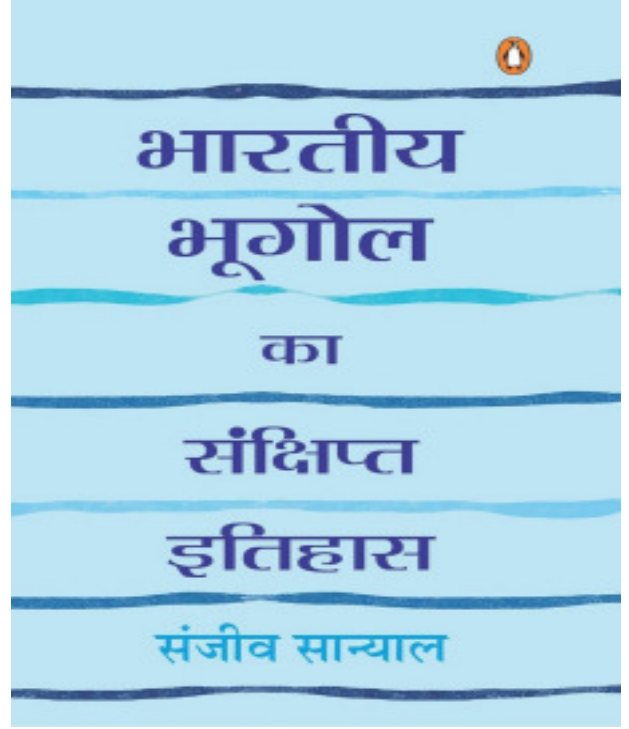
शतरुद्रिय से स्पष्ट होता है कि रुद्र अध्या शिव मनुष्यों की बस्ती से दूर रहते थे। वह चोरों, डाकुओं और ग्रात्यों के पूज्य देवता थे। यजुर्वेद में वर्णित है कि शिव का सम्बन्ध आर्य संस्कृति से नहीं, केवल अनार्य लोगों से था। गणपति, तक्षा, निपाश, रूप के गण आदि ऐसे पर्याय रुद्र के लिए व्यवहृत हुए हैं, जो उनकी अनार्य जातियों से समीपता दृढ़ करते हैं। अथर्ववेद के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि देवताओं ने महादेव (पशुपति, शर्व, धनुर्धर भव, रुद्र, उग्र) को विभिन्न दिशाओं के क्षात्यों का स्वामी नियुक्त किया था। समाज में रुद्र की महत्ता, विशिष्टता और उत्कृष्टता बढ़ती गई। द्विपद और चतुष्पद के शासक के रूप में उनको भी स्वीकार किया गया। उनका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था तथा इनका आयाम बहुत बड़ा था। अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण में उन्हें 'सहस्रत्राक्ष' कहा गया था। निकटवर्ती और दूरवर्ती समस्त पदार्थ उन्हीं के थे, साथ ही वे समग्र धनुर्धरों में श्रेष्ठ थे। उनका आघात सभी देवताओं और मनुष्यों को आहत कर सकता था। अतः उनके द्वारा अपनी रक्षा के लिए उनकी आराधना की जाती थी। रुद्र सर्वत्र था जल, अग्नि, औषधि, वनस्पति और समस्त भूतों में। आकाश और अन्तरिक्ष का वह स्वामी था। वह 'भूतपति' और 'पशुपति' था। पशुपति के रूप में उसके अधीन पाँच प्रकार के पशु थे गौ, अश्व, मनुष्य, अजा और भेड़। उनकी आराधना करते हुए कहा गया कि वे विनाश, विष और अग्नि से रक्षा करें अथर्ववेद में उन्हें भव, स्वर्ग और पृथ्वी का ईश कहा गया तथा भव, शर्व और रुद्र के बाण को श्शदाशिवश् बनने के लिए कामना व्यक्त की गई।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

प्राचीन भारतीय भूगोल की पड़ताल

संजीव सान्याल की पुस्तक भारतीय भूगोल का संक्षिप्त इतिहास (Original Title: The Incredible History of India's Geography) भारतीय भूगोल और इतिहास का एक उत्कृष्ट मिश्रण है। यह पुस्तक भारत की भौगोलिक विशेषताओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है और विभिन्न समय-काल में उनके महत्व को स्पष्ट करती है। संजीव सान्याल ने पुस्तक में भूगोल के साथ ऐतिहासिक घटनाओं, समाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों और साम्राज्यों के विकास के बीच के सम्बन्ध को बारीकी से समझाया है। वे यह दर्शाते हैं कि कैसे भारत के विभिन्न हिस्सों में भौगोलिक विविधताओं ने विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और समुदायों को पनपने का अवसर दिया और इसके परिणामस्वरूप भारत एक समृद्ध सभ्यता के रूप में उभरा। इस पुस्तक में भारत के महत्वपूर्ण भूगोलिक स्थानों जैसे नदियों, पर्वतों, मैदानों और मरुस्थलों का भी जिक्र है। सान्याल ने उन प्राचीन नगरों, व्यापारिक मार्गों और जलमार्गों का उल्लेख किया है जिन्होंने भारतीय सभ्यता के विकास में अहम भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए गंगा और सिंधु नदियों का महत्व केवल भौगोलिक नहीं बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी महत्वपूर्ण था, जिसने भारतीय सभ्यता को एकता प्रदान की। यह महत्वपूर्ण है कि ईसवी पूर्व में चौथी शताब्दी में सिकन्दर के आक्रमण एवं ईसा के पश्चात सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग की यात्राओं का विवरण भारत के प्राचीन इतिहास और प्राचीन भूगोल की जानकारी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्राचीन भारत के बारे में भारत की सीमाओं से बाहर लिखे गए इतिहास पर नजर डालते हैं, तो हमें पता चलता है कि इस दिशा में सबसे पहला प्रयास यूनानी लेखकों का है। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय हेरोडोटस, नियारकस, मेगस्थनीज, प्लुटार्क, एरियन, स्ट्रेबो, ज्येष्ठ प्लिनी और टॉलेमी आदि प्रमुख हैं। लेकिन, मेगस्थनीज को छोड़कर, इन सभी ने भारतीय इतिहास को सही अर्थों में केवल सीमांतिक रूप से ही स्पर्श किया है। उनका सरोकार अधिकांशतः भारत के उत्तर-पश्चिमी भागों और प्रधानतः उन क्षेत्रों से ही रहा है, जो फारस (पर्शिया) और यूनान के क्षेत्रों के राज्यों के भाग थे अथवा जहाँ सिकंदर का अभियान हुआ था। मेगस्थनीज ने अपनी इंडिका नामक पुस्तक में विस्तारपूर्वक लिखा है, लेकिन यह पुस्तक आज हमें उपलब्ध नहीं है। हमें मेगस्थनीज द्वारा लिखित बातों का पता डायोडोरस, स्ट्रेबो और एरियन के लेखों में शामिल अनेक उद्धरणों से लगता है। भारत की भौगोलिक संरचना में लगभग सभी प्रकार के स्थलरूप पाए जाते हैं। एक ओर इसके उत्तर में



विशाल हिमालय की पर्वतमालाएँ हैं तो दूसरी ओर और दक्षिण में विस्तृत हिंद महासागर, एक ओर ऊँचा-नीचा और कटा-फटा दक्कन का पठार है तो वहीं विशाल और समतल सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र का मैदान भी, थार के विस्तृत मरुस्थल में जहाँ विविध मरुस्थलीय स्थलरूप पाये जाते हैं तो दूसरी ओर समुद्र तटीय भाग भी हैं। कर्क रेखा इसके लगभग बीच से गुजरती है और यहाँ लगभग हर प्रकार की जलवायु भी पायी जाती है। मिट्टी, वनस्पति और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भी भारत में काफी भौगोलिक विविधता है।

प्राकृतिक विविधता ने यहाँ की नृजातीय विविधता और जनसंख्या के असमान वितरण के साथ मिलकर इसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता प्रदान की है। इन सबके बावजूद यहाँ की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक एकता इसे एक राष्ट्र के रूप में परिभाषित करती है। हिमालय द्वारा उत्तर में सुरक्षित और लगभग सात हजार किलोमीटर लम्बी समुद्री सीमा के साथ हिन्द महासागर के उत्तरी शीर्ष पर स्थित भारत का भू-राजनैतिक महत्व भी बहुत बढ़ जाता है और इसे एक प्रमुख क्षेत्रीय शक्ति के रूप में स्थापित करता है। भूगोल ने प्राचीन भारत को विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया था।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujain@gmail.com, vikramadityashodhpeth@gmail.com